मनुष्य-जाति का सुधार कैसे हो? (1896)

– रॉबर्ट ग्रीन इंगरसॉल (1833-1899)

यह सम्बोधन कोलम्बिया थियेटर, शिकागो में 12 अप्रैल 1896 को दिया गया।

1

अज्ञानता ही एकमात्र अंधकार है। हर इन्सान हालातों का आवश्यक परिणाम है, हरेक कुछ ऐसी कमियों के साथ पैदा हुआ है, जिनके लिए उसे जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता। ऐसा लगता है कि प्रकृति को न व्यक्ति की परवाह और न किसी प्रजाति-विशेष की। जीवन के पीछे जीवन और उसके पीछे मृत्यु। जीवन, प्रेरणा (instinct), विचार और क्रिया का यह हरेक रूप हालातों द्वारा ही निर्धारित होता है, अनगिनत घटनाओं और समकालीन तथ्यों के द्वारा। वर्तमान सारे भूतकाल की अवश्यंभावी संतान है और भविष्य की माता है।

हरेक आदमी खुश रहना चाहता है, भोजन, घर और वस्त्र द्वारा अपनी शारीरिक जरूरतें और अपनी क्षमता के अनुसार प्रेम, ज्ञान, दर्शन, कला तथा संगीत द्वारा अपने मन की भूख मिटाना चाहता है।

असभ्य आदमी (savage) की जरूरतें बहुत थोड़ी होती हैं, लेकिन सभ्यता के साथ-साथ शारीरिक जरूरतें बढ़ती हैं, मानसिक क्षितिज का विस्तार होता है और दिमाग अधिक और अधिक की माँग करने लगता है।

असभ्य आदमी महसूस तो करता है, पर वह शायद ही सोच-विचार करता है। असभ्य आदमी का भाव-आवेश (passion) चिंतन से अप्रभावित होता है, और दार्शनिक का चिंतन भाव-आवेश से। तर्क करने की योग्यता होने से पहले बच्चों में इच्छाएँ और भाव-आवेश होते हैं। इसी तरह प्रजाति के बचपन में इच्छाओं और भाव-आवेशों की प्रधानता रहती है।

असभ्य आदमी बनावटों (appearances) से, मन पर पड़ी हुई छापों (impressions) से नियंत्रित होता था। वह मानसिक रूप से कमजोर था, आलसी था और वह न्यूनतम विरोध के मार्ग को ही अपनाता था। वह किसी चीज को वैसी ही समझता था जैसी वह उसे दिखाई देती थी। वह प्रकृति से परे (supernatural) की शक्ति में विश्वास करता था और जब भी कभी वह खुद को मुसीबतों में पाता, वह अनेक प्रकार से अदृश्य शक्तियों की सहायता चाहता। उसके बच्चों ने उसकी नकल की, और युगों तक अनेक देशों में, लाखों-करोड़ों मनुष्यों ने, जिनमें बहुत

से दयावान और श्रेष्ठ थे, थी। वह प्रकृति से परे (supernatural) की शक्ति की सहायता माँगते रहे। अनगिनत वेदिकाओं (altars) और मंदिरों का निर्माण हुआ, और उनमें बलि और संगीत द्वारा, स्वयं को नकारते हुए समारोहों, धन्यवादों और प्रार्थनाओं के द्वारा अलौकिक (supernatural) की पूजा होती रही है।

इस सारे समय में आदमी का दिमाग धीरे-धीरे और बड़े कष्ट के साथ विकसित होता रहा है। धीरे-धीरे मन शरीर का सहायक बना और विचार श्रम का मित्र बन गया। जिस मात्रा में विचार और कार्य ने एक-दूसरे की मदद की, जिस मात्रा में सिर और हाथ एक-दूसरे के सहयोगी बने, ठीक उसी मात्रा में मनुष्य ने उन्नति की है। यह सब अनुभव का परिणाम है।

यह प्रकृति उदार और हृदयहीन, फिजूलखर्च और कंजूस है, यही प्रकृति हमारी माता है और हमारी एकमात्र शिक्षक है, और यही आदमियों को ठगती भी है। इससे ऊपर हम उठ नहीं सकते, इससे नीचे हम गिर नहीं सकते। इसी में हमको सारी अच्छाई और बुराई के बीज और भूमि दिखाई देती है। प्रकृति उत्पन्न करती है, पालन-पोषण करती है, रक्षा करती है और नष्ट भी कर डालती है।

अच्छे कर्म फलदायी होते हैं, और फल में बीज होते हैं जो अपनी बारे आने पर फल और बीज देते हैं। महान विचार कभी नष्ट नहीं होते और दयालुता के शब्द पृथ्वी पर से कभी विलीन नहीं होते।

हर दिमाग एक ऐसा खेत है, जिसमें प्रकृति विचार रूपी बीज बोती है और उसकी फसल जमीन पर निर्भर होती है।

हरेक फूल जो गुजरती हुई हवा को अपनी सुगंध देता है, वह आदमी की आत्मा पर प्रभाव छोड़ता है। पक्षियों की उड़ान उसे कला सुझाती है। समुद्र की लहरों की आवाज, बादलों की आवाज, पत्तों की खड़खड़ाहट, झरने की आवाज, बिजली की गर्जन ने मनुष्य को संगीत सिखाया, दुख और आशा को अभिव्यक्ति प्रदान की।

पर्वतमालाओं में, मैदानों में, नदियों और मुरुस्थल में, बादलों और सितारों में, बर्फ और वर्षा में, शांति और तूफान में, दिन और रात में, वनों और घाटियों में, प्रकाश के सात रंगों में, इन सब में, वृद्धि और जीवन में, क्षय (decay) और मृत्यु में, इन सब में जो उड़ती हैं और तैरती हैं, जो चलती हैं, सब चीजों में, मनुष्य ने अपने विचारों के बीज और प्रतीक पाए; और वह सब जो मनुष्य ने बनाया, वह प्रकृति का हिस्सा बन गया। यूनानियों के संगमरमर, संगीत की तरह

जीवन का गीत सिखाते हैं। महान कविताएँ, चित्र, आविष्कार, सिद्धांत और दर्शनों ने मनुष्य के मन को ढाला और विस्तृत किया। सब कुछ प्राकृतिक है। सब कुछ प्राकृतिक रूप से उत्पन्न हुआ है। प्राकृतिक क्षितिज से आगे मनुष्य नहीं जा सकता है।

इतना होने पर भी युगों तक, आदमी सभी दिशाओं में 'अलौकिक' के सहारे रहा और उसके अस्तित्व में निष्ठापूर्वक विश्वास करता रहा। उसने प्रकृति की एकरूपता में विश्वास नहीं किया; उसे कार्य-कारण का कुछ ध्यान नहीं रहा। उसे 'गति' के अविनाशी होने की कुछ भी कल्पना नहीं थी।

दवाई के रूप में उसने मंत्रों, जादू, ताबीजों और टोटकों में विश्वास किया। असभ्य आदमी को यह कभी नहीं सूझा कि बीमारी भी प्राकृतिक होती है। यांत्रिकी (mechanics) में उसने निरंतर गति को खोजा, यह मानते हुए कि लीवरों के अजीब तरीके के जुड़ाव से बल को उत्पन्न किया जा सकता है। रसायनशास्त्र में उसने अमृत (elixir) की खोज करनी चाही, पारस-पत्थर की और ऐसे तरीके जिससे वह कम कीमत की धातुओं को सोने में बदल सके। राज्य-शासन के रूप में, उसने जाना कि सारी सत्ता का स्रोत अलौकिक शक्ति में निहित है।

कई शताब्दियों तक उसकी सदाचार (morality) की कल्पना केवल आज्ञाकारी रहने में थी, प्रकृति में जो कुछ विद्यमान है, उसके प्रति आज्ञाकारी नहीं, किन्तु प्रकृति के परे किसी काल्पनिक अस्तित्व के प्रति। इन सब वर्षों में अदृश्य और अनंत की, विशाल और अगोचर अलौकिक शक्ति की पूजा, उसकी अर्चना ही धर्म था।

अनुभवों और प्रयोगों से, संभवतः संयोग से आदमी को यह पता लग गया कि कुछ रोग प्राकृतिक साधनों से ठीक किए जा सकते हैं और अनेक अवस्थाओं में उसका दुख-दर्द खास तरह के पत्तों या वृक्ष की छालों से दूर किया जा सकता है।

यह शुरुआत थी। धीरे-धीरे उसका विश्वास प्राकृतिक की दिशा में बढ़ने लगा और मंत्रों तथा जादू-टोनों में घटने लगा। शताब्दियों तक यह संग्राम होता रहा, किन्तु आखिर में प्राकृतिक की जीत हुई। अब हम जानते हैं कि सभी बीमारियाँ प्राकृतिक रूप से उत्पन्न होती हैं, और जितनी भी दवाइयाँ हैं, जितने भी ईलाज हैं, सभी प्राकृतिक नियमों से काम करते हैं। अब हम जानते हैं कि जिस प्रकार तंत्र-मंत्र और जादू-टोना गणित के सवालों को हल करने के लिए बेकार हैं, उसी

प्रकार वे किसी रोग को दूर कर सकने में भी असमर्थ हैं। अब हम जानते हैं कि कहीं कोई 'अलौकिक' ईलाज नहीं होता।

रसायनशास्त्र में जो लड़ाई लड़ी गई वह लंबी और अत्यंत तीखी रही। किन्तु अब न कोई अमृत की खोज में भटकता है और न पारस-पत्थर की। हम जानते हैं कि रसायनशास्त्र के क्षेत्र में कहीं कुछ भी अलौकिक नहीं है। हम जानते हैं कि पदार्थ अपने स्वभाव के प्रति सदा सच्चे रहते हैं; हम जानते हैं कि एक पदार्थ के कण दूसरे पदार्थ के ठीक उतने कणों के साथ मिलेंगे। रसायनशास्त्र से चमत्कार जा चुका है; इस विज्ञान में कोई जादू नहीं है, अलौकिक का कोई उपयोग नहीं बचा है। हम प्रकृति की समानरूपता पर अखंड विश्वास कर सकते हैं - इस बात पर कि पृथ्वी के आकर्षण के नियम एक जैसे रहेंगे। हम जानते हैं कि एक चक्र की परिधि और उसके व्यास (diameter) के संबंध में कोई अंतर नहीं आ सकता।

अब हम जानते हैं कि यांत्रिकी में प्राकृतिक ही सर्वोच्च है। हम जानते हैं कि मनुष्य किसी भी संभावना से बल को उत्पन्न नहीं कर सकता है; कि किसी भी संभावना से वह बल को नष्ट नहीं कर सकता है। कोई मैकेनिक अलौकिक सहायता पर निर्भर रहने या इसकी माँग नहीं कर सकता है। वह जानता है कि वह ऐसे नियमों के अनुसार कार्य करता है जिसे कोई शक्ति बदल नहीं सकती है।

इसलिए हम लोग जो संयुक्त राज्य अमेरिका में रहते हैं, विश्वास करते हैं कि शासन करने का अधिकार, नियम बनाने और इन्हें लागू करने का अधिकार शासित लोगों की रजामंदी से आता है, न कि किसी "अलौकिक" स्रोत से। हम यह नहीं मानते कि राजा, किसी "अलौकिक" शक्ति से सिंहासन पर बैठा है। और हम यह भी नहीं मानते कि किसी अलौकिक शक्ति की इच्छा से दूसरे लोग प्रजाजन हैं, गुलाम हैं या दास हैं।

इस प्रकार सदाचार के बारे में हमारे जो विचार थे वे भी बदल गए हैं। करोड़ों लोगों का अब यही विश्वास है कि जिससे सुख और कल्याण की उत्पत्ति हो, वही उच्चतम भावना में सदाचार है। अविवेकपूर्ण आज्ञापालन सदाचार का आधार या सार नहीं है। वह तो मानसिक गुलामी का नतीजा है। कर्तव्य-भाव से प्रभावित होकर उसके अनुसार कुछ करना स्वतंत्र और श्रेष्ठ होना है। केवल आज्ञा का पालन करना एक गुलाम का गुण कहलाता है; किन्तु सच्चा सदाचार स्वतंत्रता और बुद्धिमत्ता का फूल और फल है।

ऐसे अनेक लोग हैं जो इस नतीजे पर पहुँच गए हैं कि अलौकिक का सच्चे धर्म से कोई संबंध नहीं है। धर्म का यह मतलब नहीं कि बिना सबूत के या सबूत के विरुद्ध किसी बात पर विश्वास किया जाए। इसका मतलब किसी अज्ञात की पूजा नहीं है और न किसी अनंत के लिए कुछ करना। रीति-रिवाज, प्रार्थनाएँ, इलहामी किताबें, करिश्मे, विशेष दैवीकृपा, तथा दिव्य हस्तक्षेप - सभी अलौकिकता के अंश हैं, और उनका सच्चे धर्म से कुछ संबंध नहीं।

हरेक विज्ञान प्रकृति पर निर्भर है, सिद्ध हुई बातों पर। इसलिए सदाचार और धर्म को भी प्रकृति के स्वभाव में ही अपना आधार खोजना होगा।

2

युद्धों पर अपव्यय

क्योंकि अज्ञानता अंधकार है, इसलिए हमें जिस चीज की आवश्यकता है वह मानसिक प्रकाश है। इसलिए सबसे महत्त्व की बात यह है कि लोगों को यह शिक्षा दी जाए कि सारा विश्व प्राकृतिक है, आदमी ही आदमी का सहारा (providence) है, हम अपने दिमाग के विकास द्वारा कुछ कष्टों से बच सकते हैं, कुछ बुराइयों से बचे रह सकते हैं, कुछ बाधाओं को पार कर सकते हैं और प्रकृति की कुछ बातों और शक्तियों से लाभ उठा सकते हैं। यह भी कि आविष्कार और अध्यवसाय द्वारा हम एक सीमा तक अपने शरीर की जरूरतें पूरी कर सकते हैं, तथा विचार, अध्ययन और प्रयत्न द्वारा आंशिक तौर पर हम अपने मन की भूख भी मिटा सकते हैं।

आदमी को प्रकृति के परे की किसी भी शक्ति से सहायता की आशा छोड़ देनी चाहिए। अब उसे इस बात का निश्चय हो जाना चाहिए कि पूजा से धन पैदा नहीं हुआ और न प्रार्थनाओं से ऐश्वर्य। उसे मालूम होना चाहिए कि प्रकृति के परे की किसी शक्ति ने न गरीबों की सहायता की, न नंगों को वस्त्र दिए, न भूखों को भोजन दिया, निर्दोषों को बचाया, न बीमारियों को रोका और न दासों को मुक्त किया।

इस पर संतुष्ट होकर कि प्रकृति से परे कोई शक्ति है ही नहीं, आदमी को चाहिए कि वह अपना सारा ध्यान इस दुनिया की बातों पर, प्रकृति की बातों पर केंद्रित करे।

सबसे पहले उसे अपव्यय बंद करना चाहिए - शक्ति का अपव्यय, धन का अपव्यय। हर भले पुरुष तथा हर भली स्त्री को यह कोशिश करनी चाहिए कि युद्धों की आवश्यकता न रहे, लोग असभ्य-शक्ति को अपील करना छोड़ दें। आदमी जब असभ्य अवस्था में होता है, तो वह अपने शारीरिक बल पर भरोसा रखता है, और खुद ही 'ठीक' और 'गलत' का फैसला करता है। सभ्य आदमी अपने मतभेद मिटाने के लिए शस्त्रों का सहारा नहीं लेते। वे अपने झगड़ों को मध्यस्थों तथा न्यायालयों में ले जाते हैं। जंगली और सभ्य आदमी में यही बड़ा भेद है। परंतु राष्ट्र, एक दूसरे के प्रति अभी भी असभ्य रिश्ता निभाए चले जा रहे हैं। उनके पास अपने झगड़ों को निपटाने का कोई मार्ग नहीं। हर राष्ट्र अपने आप फैसला करता है और फिर उस फैसले के अनुसार कार्य हुआ देखना चाहता है। इसी से युद्ध होते हैं। हजारों आदमी इस समय इस बात में लगे हुए हैं कि अपने भाइयों को मारने के लिए नए-नए अस्त्रों-शस्त्रों का आविष्कार कैसे करें। 1800 वर्षों से शांति का पाठ पढ़ाया जा रहा है, और तब भी संसार के सभ्य राष्ट्र सबसे अधिक युद्धप्रिय हैं। यूरोप में आज लगभग एक करोड़ बीस लाख सिपाही युद्ध-क्षेत्र के लिए तैयार खड़े हैं, और हर देश की सीमाओं पर किलेबंदी है। समुद्र फौलाद के जहाजों से भरा है, जिनमें मृत्युकर गैस लदी है। सभ्य संसार ने अपने आपको दरिद्र बना लिया है और ईसाई-देशों का कर्ज, जो कि अधिकांश युद्धों के लिए ही लिया गया है, तीस अरब डालर है। इस बड़ी रकम पर सूद देना पड़ेगा और यह देना पड़ेगा, मजदूरों को, अधिकांश गरीबों को, उन्हें जिन्हें मजबूरी से जीवन की आवश्यकताओं के बिना ही रहना पड़ता है। यह कर्ज प्रतिवर्ष बढ़ रहा है। या तो इस अवस्था में परिवर्तन होना चाहिए, अन्यथा ईसाई-संसार का दिवाला निकल जाएगा।

इस रकम का सूद वर्ष में कम से कम 20 करोड़ डालर होगा। अब यदि इसमें स्थल-सेना तथा जल-सेना का खर्च शामिल कर लें, जहाजों की मुरम्मत का खर्च, मृत्यु के नए-नए साधनों के निर्माण का खर्च, तो यह सारी रकम लगभग 60 लाख डालर प्रतिदिन हो जाएगी। यदि मान लें कि कामकाज का एक दिन दस घंटे का होता है तो प्रति घंटा छह लाख डालर का खर्च हुआ और प्रति मिनट दस हजार डालर का।

जरा सोचिए कि यह सारी रकम अपने भाइयों को मारने और उसकी तैयारी करने में खर्च की जाती है। इस बड़ी रकम से जो भलाई के काम किए जा सकते हैं, जो स्कूल बनाए जा सकते हैं, जिन इच्छाओं की पूर्ति हो सकती है, उन पर विचार करो। जरा सोचो कि इस रकम से कितने घरों का निर्माण हो सकता है, कितने बच्चों के तन ढँके जा सकते हैं।

यदि हम युद्धों से दूर रहना चाहते हैं तो हमें राष्ट्रों के मतभेद अंतरराष्ट्रीय न्यायालय के द्वारा सुलझाने होंगे। यह न्यायालय निरंतर कार्य करे; इसके सदस्य विभिन्न सरकारों द्वारा चुने जाने चाहिएँ जो इसके फैसलों से प्रभावित होंगे और इस न्यायालय के आदेश से सभी देशों का निःशस्त्रीकरण हो, इसके पास एक सैन्यबल हो जो इसके फैसलों को लागू करवा सके। सभ्य विश्व में इसके अलावा सेना रखने का और कोई भी कारण नहीं होना चाहिए।

किसी भी आदमी में इतना सामर्थ्य नहीं कि वह अपनी कल्पना-शक्ति से युद्ध के कष्टों, उसकी भयानक बातों तथा उसकी क्रूरताओं को चित्रित कर सके। जरा सोचिए कि गोलियाँ आदमियों के शरीरों को छेदती हुई चली जा रही हैं। जरा विधवाओं और अनाथों की बात सोचिए। जरा लंगड़े लूले अपाहिजों की बात सोचिए।

3

धर्म पर खर्च - एक अन्य अपव्यय

आओ, हम एक दूसरे से एकदम साफ-साफ बातें करें। हम सत्य की खोज में लगे हैं। हम यह मालूम करने के लिए प्रयत्नशील हैं कि इन्सान की भलाई के लिए हमें क्या-क्या करना चाहिए। मेरा ईमानदारी से जो विचार है वही मुझे आप तक पहुँचाना चाहिए। आपका अधिकार है कि आप मुझसे वही माँगे और मुझे अपने प्रति भी सच्चा रहना चाहिए।

एक दूसरी दिशा है जिसमें मनुष्य की शक्ति और धन का अपव्यय होता है। इतिहास के आरम्भ से आज तक मनुष्य अलौकिक सहायता खोजता रहा है। शताब्दियों से संसार का धन अदृश्य शक्तियों को संतुष्ट करने में खर्च होता रहा है। हमारे अपने देश में ही इसके लिए जो धन अर्पित किया गया है उसका मूल्य कम से कम एक अरब डालर अवश्य है। इस रकम का सूद पाँच करोड़ डालर वार्षिक होगा और ऐसे आदमियों को नौकर रखने का खर्च जिनका एकमात्र काम अदृश्य शक्ति के फेर में पड़े रहना है तथा इस संपत्ति की देखभाल करते रहना है, और अधिक होगा। इस हिसाब से हमारे अपने देश में इस मद में जो खर्च होता है, वह लगभग 20 लाख डालर प्रति सप्ताह खर्च होता है। और यदि एक कामकाज का दिन दस घंटे का माना जाए तो यह खर्चा लगभग पाँच सौ डालर प्रति मिनट ठहरता है।

इतने बड़े खर्चे के एवज में जो लाभ होता है वह बहुत कम है। ऐसा नहीं लगता कि इससे किसी का भी बहुत भला होता है। इससे अपराधों में किसी प्रकार की कोई बड़ी कमी नहीं दिखाई देती। यह भी मालूम नहीं होता कि दुराचार और दरिद्रता में कुछ कमी हुई हो। अपने घर में ही इतनी स्पष्ट असामान्यता के बावजूद धन की बड़ी बड़ी रकमें इस बात पर खर्च की जाती है कि हम 'अदृश्य' के बारे में जो विचार हैं उनका दूसरी जातियों में प्रचार करें। हमारे चर्च सप्ताह में अधिकांश समय बंद रहते हैं। वे सात दिनों में एक ही दिन थोड़े समय के लिए खुलते हैं। कोई नहीं चाहता कि ये चर्च या चर्च संगठन नष्ट हो जाएँ। इच्छा केवल इतनी ही है कि यह संसार का कुछ ठोस भला कर सकें। हमारी छोटी-छोटी बस्तियों में जिनकी आबादी तीन या चार हजार की होगी, चार-चार, पाँच=पाँच या इससे भी अधिक चर्च होंगे। इन चर्चों का आधार आपस के निस्सार भेद हैं और यह स्वीकार करना होगा कि इन भेदों के पक्ष और विपक्ष में जितने भी तर्क हैं वे असंख्य बार दिए जा चुके हैं। इन विषयों में नया कुछ नहीं कहा जा रहा है। तो भी पुराने तर्कों को ही रोज-रोज दोहरा कर विवाद जारी रक्खा जाता है।

अब मुझे ऐसा लगता है कि जिस बस्ती में चार या पाँच हजार आदमी हों उसमें केवल एक चर्च होना चाहिए और उसके मकान न केवल रविवार के दिन किन्तु सप्ताह के हरेक दिन उपयोग में आना चाहिए। इस मकान में बस्ती का पुस्तकालय होना चाहिए। यह घर एक प्रकार से लोगों का सभा-भवन होना चाहिए, जहाँ उन्हें संसार के मुख्य समाचार-पत्र और पत्रिकाएँ मिल सकें। इसकी रचना थियेटर की तरह की होनी चाहिए। स्थानीय लोगों को समय-समय पर नाटक करने चाहिए। एक संगीत-मंडली हो, जिससे संगीत का भी विकास रहे। जब भी लोगों की इच्छा हो लोग वहाँ मिल सकें। स्त्रियाँ अपना सीना-परोना कर सकें और उसके साथ ही ऐसे कमरे होने चाहिए, जिनमें लोग तरह-तरह के खेल खेल सकें। हर चीज अधिक से अधिक संतोषजनक होनी चाहिए। बस्ती के लोगोन के लिए यह भवन अभिमान की चीज हो। उन्हें इसके कोनों में मूर्तियाँ और इसकी दीवारों पर चित्र लगाने चाहिए। यह उनका विद्या-केंद्र बन जाना चाहिए। उन्हें किसी योग्य आदमी को संभवतः किसी प्रतिभावान व्यक्ति को रविवार के दिन वास्तविक महत्त्व के विषयों पर भाषण देने के लिए नियुक्त करना चाहिए; उन्हें अपने पुरोहितों को कहना चाहिए -- "हम सप्ताह-भर कामकाज में लगे रहते हैं; जिस समय हम अपने व्यापार तथा अन्य पेशों में लगे रहते हैं उस समय हम चाहते हैं कि आप अध्ययन करें और रविवार के दिन हमें बताएँ कि आपने क्या खोज की है।"

इस प्रकार का पुरोहित अपने प्रवचन के लिए ग्रीक लोगों के इतिहास, दर्शन तथा कला को ले सकता है। वह मिस्र और भारत के विचित्र अध्यात्म और पुराणों को ले सकता है। उसे चाहिए कि वह अपने श्रोताओं को संसार के दर्शन-शस्त्रों, महान वक्ताओं, महान आविष्कारकों, महान व्यवसायियों - प्रगति के सभी सैनिकों से परिचित कराए। एक रविवार-स्कूल होना चाहिए जहाँ बच्चों को प्रकृति की, वनस्पति-शास्त्र की, कृमि-शास्त्र की, भूगर्भ-शास्त्र की तथा खगोल-शास्त्र की बातें बताईं जाएँ। उन्हें महान काव्यों से परिचित कराया जाए और साहित्य के श्रेष्ठतम अंशों से, वीरों, आत्म-त्यागियों तथा उदार-चेताओं की कहानियों से परिचित कराया जाए।

मुझे लगता है कि ऐसी 'संगतें' कुछ ही वर्ष में अमेरिका के सबसे अधिक समझदार लोगों की बन जाएँगी।

सच्ची बात यह है कि लोग पुरानी बातों से तंग आ गए हैं। उन्हें अब करिश्मों में विश्वास नहीं रहा। अदृश्य में विश्वास नहीं रहा, और जिन बातों में उन्हें विश्वास नहीं, उनमें उन्होंने दिलचस्पी ही लेनी छोड़ दी।

अज्ञानता से बढ़कर अंधकार नहीं है।

ज्ञान से बढ़कर प्रकाश नहीं।

जब-जब भी हम अपनी एक गलती को, एक वास्तविकता से, एक झूठ को एक सत्य बात से, बदल सकते हैं, तब-तब हम आगे बढ़ते हैं। हम संसार के मानसिक ज्ञान में वृद्धि करते हैं, और इस प्रकार, और केवल इसी प्रकार मानव-जाति के भावी ऐश्वर्य और सभ्यता की बुनियाद रक्खी जा सकती है।

मैं किसी पर दोषारोपण नहीं करता। मैं किसी के इरादों को संदेह की नजर से नहीं देखता; मैं स्वीकार करता हूँ कि संसार इससे भिन्न कुछ आचरण नहीं कर सकता था।

लेकिन हमारी भावी आशा हमारी वर्तमान समझदारी पर ही निर्भर करती है। आदमी को अपनी आय के साधनों पर अधिकार करना चाहिए। उसे असंभव को प्राप्त करने की कोशिश में अपनी शक्तियों का अपव्यय नहीं करना चाहिए।

उसे प्राकृतिक शक्तियों से लाभ उठाना चाहिए। उसे शिक्षा पर निर्भर रहना चाहिए, जो भी ज्ञान वह अपनी इंद्रियों द्वारा देख-भालकर, अनुभव करके, तर्क करके प्राप्त कर सके। उसे मिथ्या विश्वास और पक्षपात की जंजीरों को तोड़ देना चाहिए। उसे सभी विषयों में अपने विचार प्रकट करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। उसे पता होना चाहिए कि खुश रहने के लिए कौन कौन सी आवश्यक बातें हैं, और इतना बुद्धिमान होना चाहिए कि उन बातों के अनुसार जीवन बीता सके।

4 इन अपराधों को कम कैसे कर सकते हैं?

जो कुछ अब तक संसार के सुधार के लिए किया गया है, जितने आविष्कार हुए हैं, जितनी प्राकृतिक शक्तियाँ अब आदमी की अनथक गुलामी करती हैं, जितने खेती में, मशीन में तथा मानवी-श्रम के हर विभाग में सुधार हुए हैं, उन सबके बावजूद संसार से दरिद्रता और अपराधों का अभिशाप दूर नहीं हुआ।

जेलखाने भरे हुए हैं, अदालतों में भीड़ लगी हुई है, कानून के अफसरों को खाली बैठना नहीं मिलता - तो भी अपराध में कहीं कुछ कहने-सुनने लायक कमी नहीं दिखाई देती।

हजारों वर्षों तक आदमी ने जेलखानों द्वारा, उत्पीड़न द्वारा, अंग-छेद द्वारा, तथा मृत्यु द्वारा अपने भाइयों को सुधारने का प्रयत्न किया; तो भी संसार के इतिहास से यही सिद्ध होता है कि दंड में किसी प्रकार की सुधार की शक्ति नहीं। अपराध को कम करने के लिए 'दंड' को ओर अधिक भयानक बना देना असंभव है।

कुछ ही वर्ष पहले, सभ्य देशों में, चोरी तथा उससे भी छोटे अपराधों के लिए प्राण-दंड दिया जाता था, तो भी चोरी तथा दूसरे सभी तरह के अपराध कारण वालों की संख्या वृद्धि पर रही। राजद्रोहियों को या तो फाँसी दे दी जाती थी, या उन्हें चीर दिया जाता था, या घोड़ों द्वारा घसीटे जाकर उनके टुकड़े-टुकड़े करा दिए जाते थे; तो भी राजद्रोह वृद्धि पर रहा।

इन भयानक कानूनों में से बहुत से रद्द के दिए गए हैं। रद्द कर देने के कारण निश्चित रूप से, अपराधों में वृद्धि नहीं हुई है। हम अपने देश में फाँसियों, सुधार-घरों और जेलों में विश्वास करते हैं। जब कोई किसी की हत्या करता है तो उस आदमी को या तो फाँसी पर लटका दिया जाता है, या बिजली के स्पर्श से या पीट-पीट कर मार दिया जाता है, और दूसरे ही क्षण

एक नया हत्यारा वही कृत्य करने के लिया तैयार होता है। आदमी चोरी करता है, उन्हें कुछ निश्चित वर्षों तक सुधार-घर में भेज दिया जाता है, उनके साथ जंगली जानवर की तरह बर्ताव किया जाता है, लगातार उत्पीड़ित किया जाता है। सजा के अंत होने पर उन्हें छोड़ दिया जाता है, बस इतने पैसों के साथ जिससे वे उस स्थान पर वापिस जा सकें, जहाँ से उन्हें भेजा गया था। उन्हें बिना साधनों के - बिना मित्रों के, संसार में भेज दिया जाता है - वे सजायाफ्ता हैं। उन पर संदेह किया जाता है, उन्हें धिक्कारा जाता है। अगर उन्हें कहीं कोई काम मिल जाता है, तो जैसे ही उनके सजायाफ्ता होने का पता चलता है, उन्हें निकाल दिया जाता है। वे लोगों से आदर-सम्मान प्राप्त करने के लिए जो कुछ कर सकते हैं, वह करते हैं, वे अपनी जेल जाने की बात और अपनी पहचान को छुपाते हैं। थोड़ी देर में, ईमानदारी से आजीविका कमाने में विफल होने पर, वे अपराध का सहारा लेते हैं, वे फिर अदालतों में दिखाई देते हैं, और फिर जेलों की दीवारों के पीछे पहुँच जाते हैं। कोई सुधार नहीं, कोई सुधरने का मौका नहीं, कोई आजीविका का साधन नहीं।

यह सब कुख्यात है। आदमियों को, दंड के रूप में, सुधार-घरों में नहीं भेजना चाहिए, क्योंकि हमें याद रखना होगा कि आदमी वही करते हैं जो उन्हें करना होता है। प्रकृति ज्यादातर गुणवान आदमी पैदा नहीं करती है। मानव-जाति में, असफल लोगों का प्रतिशत काफी अधिक है। विशेष परिस्थितियों में, विशेष रुचियों और विशेष विशेष भावनाओं और एक विशेष क्वालिटी और संख्या में और दिमाग के आकार के साथ, आदमी चोर और धोखेबाज बनते हैं। सवाल यह है कि क्या सुधार संभव है, क्या परिस्थितियों में बदलाव करके एक आदमी में बदलाव लाया जा सकता है। अपराधी खतरनाक होता है और समाज को अपनी सुरक्षा का अधिकार है। अपराधी को कैद कर देना चाहिए और यदि संभव है तो उसे सुधारा जाना चाहिए। एक जेलखाने को एक विद्यालय होना चाहिए; दोषियों को शिक्षित किया जाना चाहिए। इसलिए, कैदियों को काम करना चाहिए, और उनकी मजदूरी के लिए उन्हें उचित मेहनताना दिया जाना चाहिए। सर्वोत्तम लोगों को जेलों का प्रभार देना चाहिए। वे दयावान हों, दार्शनिक हों, उन्हें मानव-प्रकृति का ज्ञान हो। कैदी को -- उदाहरण के लिए, यदि पाँच साल की शिक्षा दी जाय - सदाचार के नियम सीखा दिए जाएँ, शील के बारे में समझा दिया जाय और अपराध के दुष्परिणाम दिखा दिए जाएँ, यदि उसे यह विश्वास करा दिया जाय कि समाज को उससे घृणा नहीं, न कोई उसे दंड देना चाहता है, न पद से हटाना चाहता है और न लूटना चाहता है, और साथ ही जिस समय वह उस

‘सुधार-घर’ से बाहर निकले उस समय उसे उसका उचित मेहनताना दे दिया जाए और कानून उसे इस बात की आज्ञा दे कि वह अपना नाम बदल सके, जिससे उसका व्यक्तित्व छिपा रहे, तो वह सरकार के एक मित्र के तौर पर जेल से बाहर हो सकेगा। उसे ऐसा लगेगा कि वह पहले की अपेक्षा एक अच्छा आदमी बना दिया गया है, और उसके साथ न्याय का बर्ताव हुआ है, दया का बर्ताव हुआ है। जो रुपया वह अपने साथ ले जाएगा वह उसके लिए एक ढाल का काम देगा, जिससे वह प्रलोभनों के विरुद्ध अपनी रक्षा कर सकेगा, जब तक वह कोई रोजगार नहीं पा लेता। यह आदमी अपराध करने को अपनी जीविका का साधन न बनाकर स्वयं एक अच्छा मान्य और काम का नागरिक बन सकेगा।

आज जैसी स्थिति है, सुधार नाम मात्र का ही होता है। बार-बार वही चेहरे अदालत के सामने आते हैं; उन्हीं आदमियों को बार-बार दंड सुनाए जाते हैं, और वे ही आदमी बार-बार जेलों में लौट लौट आते हैं। हत्यारे, जो भयानक वर्ग के हैं, जिन्हें प्रकृति ने ही ऐसा बनाया है कि वे भयानक दुष्कर्मों की ओर दौड़-दौड़कर जाते हैं, जीवन भर के लिए कैद कर दिए जाने चाहिए अथवा उन्हें किसी द्वीप में रख देना चाहिए - पुरुषों को एक द्वीप में और स्त्रियों को दूसरे द्वीप में। ऐसे लोगों को पृथ्वी की आबादी नहीं बढ़ानी चाहिए।

न तो मन और शरीर के रोगी को और न उनकी विकृतियों को ही स्थायित्व मिलना चाहिए। जीवन अपने स्रोत पर ही गँदला नहीं हो जाना चाहिए।

5 सभी के लिए घर चाहियें

घर राष्ट्र की इकाई है। अधिक घरों का अर्थ है, राष्ट्र की अधिक पक्की नींव और अधिक सुरक्षा।

जो भी संभव हो वह किया ही जाना चाहिए, जिससे यह किरायेदारों अथवा काश्तकारों का राष्ट्र न बन जाए। जो लोग खेती करते हैं उन्हें ही जमीन का मालिक होना चाहिए। हमारे देश में इस दिशा में कुछ कार्य हुआ है,और शायद प्रत्येक राज्य में घर संबंधी छूट दी गई है। इस छूट से महाजन-जाति के कुछ हानि नहीं हुई है। जब हम कर्ज के लिए लोगों को जेल में डालते थे, उस समय भी लोगों का कर्जा, कम से कम, उतना ही अरक्षित था, जितना आजकल। घर संबंधी कानूनों के कारण एक निश्चित मूल्य या निश्चित परिणाम का घर जबरदस्ती बेचा नहीं

जा सकता। इन कानूनों से बड़ा लाभ हुआ है। निश्चय से इनके कारण राष्ट्र के घरों की संख्या तिगुनी हो गई है।

मैं एक कदम और आगे जाना चाहता हूँ। यदि संभव हो तो मैं चाहता हूँ कि लोगों को किराये के घर से हटाकर, उनके अपने घरों में दाखिल किया जाए; जहाँ निजता हो, जहाँ ये लोग प्रकृति के साथ भागीदारी अनुभव कर सकें; जिससे उनका अच्छी सरकार में रुचि हो। परिवहन के साधनों के साथ, गरीब लोगों को शहर की झुग्गी-झोंपड़ियों में रहने की जरूरत नहीं है, जहाँ गरीबी कंगालों को जन्म देती है और कंगाल रोगों को जन्म देते हैं। मैं एक उचित मूल्य तक के घर को न केवल बिक्री से, बल्कि हर तरह के कर (टैक्स) से भी मुक्त रखूँगा। इन घरों को हर प्रकार से मुक्त रखना चाहिए; ये परिवार के होने चाहियें, ताकि प्रत्येक माँ यह अनुभव कर सके कि उसके सिर के ऊपर जो छत है, वह उसकी है; कि उसका घर उसका राजमहल है; और इससे उसे कोई नहीं निकाल सकता है, देश की सरकार भी नहीं। विशेष परिस्थितियों के अधीन, मैं इस घर की बिक्री की अनुमति दूँगा, और बिक्री की प्रक्रिया को, एक तय समय-सीमा तक, कर-मुक्त रखूँगा, ताकि उस दौरान वे दूसरे घर में निवेश कर सकें; और इसे घरों का राष्ट्र बनाने के लिए, भू-स्वामियों का राष्ट्र बनाने के लिए, घर-निर्माताओं का राष्ट्र बनाने के लिए यह सब किया जाना चाहिए। मैं इन घरों को संरक्षित रखने और अधिग्रहित करने के लिए वही शक्तियाँ माँगता हूँ जो कि रेलमार्ग बनाने के लिए भूमि अधिग्रहित करने के लिए होती हैं। प्रत्येक राज्य को एक भूमि का रकबा निश्चित कर देना चाहिए जिसे एक व्यक्ति रख सकता है, जो उससे कभी नहीं लिया जा सकता है।

अमेरिका के लिए इससे महत्त्वपूर्ण कुछ भी नहीं है कि अमेरिका के बच्चे घर के चूल्हे के पास पैदा हों।

एक दूसरा सवाल है, जिसमें मेरी बड़ी रुचि है। मेरी राय में हमारी शताब्दी के बुद्धिमानों और दयावानों को इस सवाल का जवाब देना चाहिए।

हम सभी जानते हैं कि युगों से आदमी 'गुलाम' होते आए हैं, और हम यह भी जानते हैं कि इन सारे वर्षों में, एक सीमा तक, स्त्रियाँ गुलामों की भी गुलाम रही हैं। मानव-जाति के लिए यह अत्यधिक महत्त्व की बात है कि स्त्रियाँ, माताएँ स्वतंत्र हों। निस्संदेह विवाह का बंधन बहुत महत्त्वपूर्ण और बहुत ही पवित्र है। सभी संस्थाओं में विवाह की संस्था सबसे महत्त्व की है। हाँ,

विवाह का 'संस्कार' वास्तविक विवाह नहीं है। यह तो भीतर जलने वाली प्रेमाग्नि का बाहरी साक्षी मात्र है। परस्पर प्रेम के बिना वास्तविक विवाह नहीं हो सकता। मैं विवाह के 'संस्कार' में विश्वास करता हूँ कि यह सार्वजनिक होना चाहिए। इसका लेख-जोखा रहना चाहिए। इसके अतिरिक्त, विवाह-संस्कार द्वारा सारे संसार को यह सूचना मिल जाती है कि जो विवाह करने जा रहे हैं, वे परस्पर प्रेमी हैं।

अब तलाक का सवाल उठता है। करोड़ों आदमी यह समझते हैं कि जिनका विवाह होता है वे किसी अदृश्य शक्ति द्वारा एक-दूसरे के साथ बाँध दिए जाते हैं। इसलिए उन्हें इकट्ठे रहना चाहिए, कम से कम जीवन भर विवाहित तो अवश्य रहना चाहिए। यदि जिनका विवाह हुआ है उन सबको किसी अदृश्य शक्ति ने ही इकट्ठा किया है, तो हमें स्वीकार करना होगा कि वह अदृश्य शक्ति असीम बुद्धि की मालिक नहीं है।

अंत में, विवाह एक शर्तनामा है, दोनों पक्षों को शर्तों का पालन करना ही चाहिए और दोनों में से किसी एक को ही उन शर्तों से तब तक मुक्ति नहीं मिलने चाहिए, जब तक ऐसा करना समाज-हित के लिए जरूरी न हो। मैं ऐसा कानून चाहूँगा कि यदि पत्नी लगातार और दुष्टतापूर्ण ढंग से शर्तों को तोड़े, तो पति तलाक प्राप्त कर सके। ऐसा तलाक बराबरी के आधार पर होना चाहिए। मैं स्त्री को भी तलाक की अनुमति दूँगा, यदि वह इसके लिए प्रार्थना करती हो, और इसे चाहती हो।

मैं यह केवल उसके लिए नहीं चाहूँगा बल्कि सारे समुदाय के लिए, सारे राष्ट्र के लिए। सभी बच्चे प्रेम की संतान होने चाहिए। जैसे ही वे जन्म लें, उनका ईमानदारी से स्वागत होना चाहिए। उन माताओं के बच्चे जो उनके पिताओं को नापसंद करती हैं, उनसे घृणा करती हैं, उनसे पिंड छुड़ाना चाहती हैं, संसार को पागलपन से और अपराध से भर देंगे। कोई भी औरत न कानून के कारण और न लोगों की राय के ही कारण, इस बात के लिए मजबूर नहीं होनीसी कि उसे किसी ऐसे आदमी के साथ रहना पड़े जिससे वह घृणा करती यही। इस बात का कोई खतरा नहीं है कि तलाक संसार को अनैतिक बनाएगा और इस बात का भी खतरा नहीं है कि मानव हृदय से वह दिव्य वस्तु जिसे प्रेम कहते हैं, जड़मूल से जाती रहेगी। जब तक मानव-जाति का अस्तित्व है, और पुरुष और स्त्री एक-दूसरे को 'प्रेम' करते रहेंगे, तब तक सच्चे और पूर्ण विवाह होते रहेंगे। सदाचार के लिए गुलामी न तो अच्छी मिट्टी का ही काम देती है और न वर्षा का।

मैं एक पुरुष को तलाक देने और एक स्त्री को तलाक देने में भेद करता हूँ। उसका कारण है। एक स्त्री अपने पति को अपना यौवन और अपना सौन्दर्य दहेज में देती है। पुरुष को इस बात की अनुमति नहीं मिलनी चाहिए कि क्योंकि अब वह बूढ़ी हो गई है और उसके मुँह पर झुर्रियाँ पड़ गई हैं, इसलिए वह उसे छोड़ दे। उसकी पूँजी जा चुकी है; और भावी जीवन के लिए वह कुछ विशेष आशा नहीं रख सकती। इसके विपरीत हो सकता है पुरुष विवाह के समय से भी अच्छी हालत में हो। सामान्य रूप से, पुरुष प्रायः अपनी व्यवस्था आप सकता है और स्त्री को सहायता की आवश्यकता होती है। इसलिए मैं पुरुष को तब तक उसे छोड़ने की अनुमति नहीं दूँगा, जब तक स्त्री विवाह की शर्तों का बुरी तरह से उल्लंघन न करती हो। लेकिन समुदाय के लिए और विशेष रूप से बच्चों के लिए, अमीन उसके इच्छा करने मात्र पर पति को छोड़ देने की अनुमति दूँगा।

जब तक स्वतंत्र स्त्रियों, स्वतंत्र माताओं की एक पीढ़ी नहीं होती, तब तक महान पुरुषों की भी कोई एक पीढ़ी नहीं हो सकती।

हमारी भाषा का कोमलतम शब्द है - 'मातृत्व'। इस एक शब्द में आनंद और पीड़ा का प्रेम तथा आत्म-बलिदान का दैवी मिश्रण है। यह शब्द पवित्र है।

6 मजदूरों की समस्या

अनेक वर्षों से जिसे हम "मजदूरों की समस्या" कहते हैं, उस पर लगातार विवाद चल रहा है - मजदूर और पूंजीपति के संघर्ष के बारे में। अनेक तरीके निकाले गए हैं और इस समस्या को सुलझाने के लिए कुछ प्रयोग भी किए गए हैं। लाभ में हिस्सा बँटाने से काम नहीं चलेगा; क्योंकि जो हानि में हिस्सा नहीं बँटा सकते उनके साथ लाभ में हिस्सा बँटा सकना असंभव है। समितियों की स्थापना हुई है। उद्देश्य यही रहा है कि जो इन समितियों के सदस्य हों वे खर्च करें और लाभ में हिस्सा बँटाएँ। अधिकांश मामलों में यह योजना भी सफल नहीं हुई।

दूसरों ने न्यायालय से न्याय कराने का समर्थन किया है; और यदि यह संभव मान भी लिया जाय कि मालिकों को न्यायिक-निर्णयों से बाँधा जा सकता है, तो भी अभी तक ऐसा कोई तरीका नहीं मालूम हुआ जिससे मजदूर लोग भी उन निर्णयों से बँधे रहें। दूसरे शब्दों में, इस समस्या का हल नहीं हुआ।

जहाँ तक मेरी राय है, मालिकों और मजदूरों को सभ्य बनाने के अतिरिक्त - मुझे इस समस्या का कोई संतोषजनक हल नहीं दिखाई देता। यह सवाल इतना उलझा हुआ है, इसमें इतनी अधिक शाखाएँ प्रशाखाएँ हैं कि मुझे कानून या बाल-प्रयोग द्वारा इस समस्या का हल हो सकना संभव नहीं दीखता। मालिकों से यह आशा की जाती है कि वे अपने मुनाफे के अनुसार मजदूरों को मजदूरी का भुगतान दें। वे दे भी सकते हैं, नहीं भी दे सकते हैं। हो सकता है कि मालिकों की आपस की होड़ उनके मुनाफे को ही नष्ट कर दे। जिस प्रकार मजदूर किसी मालिक की दया पर निर्भर करते हैं, उसी प्रकार मालिक भी दूसरे मालिकों की दया पर निर्भर करता है। मालिक लोग कीमतों पर अधिकार नहीं कर सकते, वे माँग को काबू में नहीं रख सकते। उनका किसी सामग्री पर भी कोई अधिकार नहीं। और आज के संसार में यदि षड़यंत्र द्वारा उनमें बाधा न डाली जाय तो पदार्थ की उत्पत्ति और उसकी माँग के जो नियम हैं वे ही व्यापार के संसार पर लागू होते हैं।

क्या मस्तिष्क के विकास के बिना, बुद्धि के प्रकाश की सहायता के बिना, कभी ऐसा समय आएगा, और क्या ऐसा समय आ सकता है, जब क्रेता वस्तु का उचित मूल्य देना चाहे, जब मालिक उचित लाभ से संतुष्ट हो जाय, जब मालिक कच्चे माल के लिए उचित मूल्य देने को उत्सुक रहे; जब वह वास्तव में मजदूर को उसकी मजदूरी का पूरा बदला देना चाहे?क्या मालिक कभी इतना सभ्य हो जाएगा कि वह यह समझ जाए कि और चीजों की तरह संसार के मजदूरों के बाजार पर भी; मजदूरों के मिलने और उनकी माँग' का सिद्धांत लागू नहीं किया जा सकता? क्या वह कभी इतना सभ्य हो जाएगा कि वह गरीब लोगों की भूख, कपड़ों की जरूरत और उनकी दरिद्रता से अनुचित लाभ न उठाए? क्या वह कभी सभ्य हो जाएगा कि वह कह सके कि "जो मजदूर मेरे लिए काम करता है, उसे मैं इतना पर्याप्त दूँगा कि वह उसका उचित आधार बन सके, वह उससे अपने बीबी-बच्चों की खबर ले सके, वह उससे यह सब करके अपने बुढ़ापे में खाने पहनने के लिए कुछ बचाकर भी रख सके। वह जीवन की पतझड़ के लिए, एक घर बना सके, जिसमें बैठकर वह अपने थके और काँपते हुए हाथों को सेंक सके?"

हाँ, बिना श्रम की सहायता के पूँजी कुछ नहीं कर सकती। संसार में जो कुछ भी मूल्यवान है, सब मजदूर की कमाई है। चाहे आवश्यक चीजों पर कर लगे, चाहे एशो-आराम की चीजों पर कर लगे, मजदूर को ही हर पाई देनी होती है।

हमें याद रखना चाहिए कि दिन प्रतिदिन मजदूर समझदार होते जा रहे हैं और इसी प्रकार मैं समझता हूँ कि मालिक भी धीरे-धीरे अधिक सभ्य, धीरे-धीरे अधिक दयालु होते जा रहे हैं। बहुत से आदमियों ने जिन्होंने अपने भाइयों के परिश्रम के फलस्वरूप अपार धनराशि एकत्रित की, उन्होंने करोड़ों रुपये 'दान' में खर्च किए, अथवा शिक्षा-प्रसार में। यह एक प्रकार का प्रायश्चित है, क्योंकि जिन आदमियों ने अपने साथियों के दिमाग, और शरीर-बल से यह धन अर्जित किया, उन्होंने यह अनुभव किया कि यह पैसा उनका ही नहीं था। बहुत-से मालिकों ने, विश्वविद्यालयों के लिए, पुस्तकालयों की स्थापना के लिए, पानी के चश्मों की बनावट के लिए अथवा महान पुरुषों की यादगार बनाने के लिए कुछ धन छोड़ कर अपना लेख-जोखा बराबर किया है। मैं समझता हूँ कि यह कहीं अधिक अच्छा होता यदि उन्होंने इन रुपयों को उन लोगों की दशा सुधारने में खर्च किया होता, जिन्होंने इसे वास्तव में कमाया है।

इसलिए मैं सोचता हूँ कि जब हम सभ्य हो जाएँगे, तो बड़े-बड़े संघ उन लोगों के लिए हर तरह की व्यवस्था करेंगे, जिन्होंने उनकी सेवा में अपना जीवन खपाया है। मैं समझता हूँ कि बड़ी-बड़ी रेल-कंपनियों को अपने थके-माँदे मजदूरों को पेंशन देनी चाहिए। उन्हें वृद्धावस्था में उनकी सँभाल करनी चाहिए। उन्हें अपने नौकरों को एकदम निस्सत्व बनाकर दरिद्र-घरों में जीवन बिताने के लिए नहीं छोड़ देना चाहिए। इन बड़ी-बड़ी कंपनियों को चाहिए कि जिन आदमियों को वे चल सकने में असमर्थ बनाती हैं, उनकी सुध-बुध लें। उन्हें उन आदमियों का ध्यान रखना चाहिए, जिनके जीवन उन्होंने ले लिए, और जिनका परिश्रम ही उनके ऐश्वर्य की आधारशिला है। इस सवाल पर जनता की भावना इस हल तक उभारी जानी चाहिए कि इन कंपनियों को किसी आदमी की सारी जीवन-शक्ति का उपयोग कर लेने के बाद उसकी वृद्धावस्था में उसे उसी तरह छोड़ने में लज्जा आए, जैसे कोई फटी-पुरानी टाई फेंक देता है।

यह संभव है कि मिस्त्री और मजदूर आगे चलकर इतने समझदार बन जाएँ कि वे आपस में एक होकर इकट्ठे कदम उठा सकें। यदि ऐसा हो सके तो उनकी उचित मजदूरी निश्चित हो सकती है और लोगों को उसे देने के लिए मजबूर भी किया जा सकता है। इस प्रकार के जितने भी प्रयत्न अभी तक गए हैं, वे सब स्थानीय रहे हैं, और उन्होंने किसी प्रकार की सफलता नहीं मिली। लेकिन यदि वे संगठित हो सकें तो उन्हें जो उचित है, जो न्याय है, वह मिल सकता है, और उन्हें लोगों के बहुत बड़े बहुमत की सहानुभूति प्राप्त हो सकती है।

लेकिन इस तरह की कोई बात कर सकने से पहले उन्हें वास्तव में समझदार बनना होगा - उनमें इतनी समझ होनी चाहिए कि वे उचित को पहचान सकें और इतनी ईमानदारी भी कि उससे अधिक की आशा न करें।

अभी तक मजदूर के लिए इतना कुछ हो रहा है कि मुझे भविष्य आशापूर्ण, अत्यधिक आशापूर्ण लगाता है। बहुत से देशों में मजदूरी के घंटे कम कर दिए गए हैं, बहुत कम। एक समय था जब आदमी प्रतिदिन 15 और 16 घंटे काम करता था। अब सामान्य तौर पर 10 घंटे से अधिक का दिन नहीं होता और झुकाव इसी ओर है कि मजदूरी के घंटों को और भी कम कर दिया जाय।

यदि हम बड़े कालखंड की आपस की तुलना करें तो जो उन्नति हुई है उसे हम अधिक स्पष्टता से देख सकते हैं। 1860 में एक मजदूर, एक कारीगर तथा एक मिस्त्री की वर्ष भर की औसत आमदनी 285 डॉलर थी। अब यह लगभग 500 डॉलर है, और आज एक डॉलर में 1860 की अपेक्षा जीवन की अधिक आवश्यकताएँ खरीदी जा सकती हैं, अधिक भोजन, अधिक कपड़े तथा अधिक जलावन। इन बातों से भविष्य के लिए आशा बंधती है।

हमारी सारी सहानुभूति, उन्हीं लोगों से होनी चाहिए, जो काम करते हैं, जो परिश्रम करते हैं, उन स्त्रियों से जो स्वयं मेहनत करती हैं, और बच्चों से; क्योंकि हम जानते हैं कि श्रम ही सबका आधार है और जो परिश्रम करते हैं, वे ही वास्तव में इस सभ्यता और उन्नति के भवन के चमकदार ढाँचे को खड़ा रक्खे हुए हैं।

7 बच्चों को शिक्षित बनाओ

हर बच्चे को आत्म-निर्भर रहने की शिक्षा देनी चाहिए, और हर किसी को यह शिक्षा मिलनी चाहिए कि वह जिस प्रकार मौत से बचता है उसी प्रकार दूसरों का भार बनने से बचे।

हर बच्चे को यह शिक्षा मिलनी चाहिए किजो उपयोगी हैं वे ही सम्माननीय भी हैं, और जो दूसरों के परिश्रम की कमाई खाते हैं वे समाज के शत्रु हैं। हर बच्चे को यह बताना चाहिए कि उपयोगी काम पूजा है और समझदारी के साथ किया गया परिश्रम, सर्वश्रेष्ठ ढंग की पूजा।

बच्चों को विचार करना, खोज करना, अपनी बुद्धि पर, अपने परीक्षण पर निर्भर रहना सिखाना चाहिए, उन्हें इंद्रियों का उपयोग करना सिखाना चाहिए, उन्हें केवल वे ही बातें सिखानी चाहिए जिनका कुछ न कुछ उपयोग हो। उन्हें औजारों को तथा अपने हाथों को काममें लाना आना चाहिए और अपने विचारों के अनुसार नवीन वस्तुओं की रचना करना। उनका जीवन बेकार अथवा बेकार चीजों के संग्रह में नष्ट नहीं होना चाहिए। मृत भाषाओं के सीखने में तथा इतिहास के अध्ययन में, जो अधिकतर ऐसी बातों के ब्यौरे के अलावा और कुछ नहीं, जो कभी घटी ही नहीं, उनके वर्ष खर्च नहीं होने चाहिए। बड़ी-बड़ी लड़ाइयों तथा राजाओं के पैदा होने और मरने की तिथियों से दिमाग को भरना बेकार है। उन्हें इतिहास का 'दर्शन' सिखाना चाहिए और 'जातियों', 'दर्शनशास्त्रों', 'मतों' और सबसे बढ़कर 'विज्ञानों' का विकास-क्रम सिखाना चाहिए।

इस प्रकार उन्हें न केवल आर्थिक ईमानदारी, किन्तु दिमागी ईमानदारी का भी महत्त्व समझाना चाहिए - वे एकदम सच्चे हों अपने वास्तविक विचारों को प्रकट करें और अपनी यथार्थ राय दें। यदि माता-पिता चाहते हैं कि उनके बच्चे ईमानदार हों तो उन्हें स्वयं ईमानदार होना चाहिए। यह असंभव नहीं कि ढोंगियों की संतान अपने माता-पिता के दुर्गुणों को ग्रहण कर ले। जो स्त्री-पुरुष बहुमत के साथ सहमत होने का ढोंग करते हैं, जो एक तरह सोचते हैं और दूसरी तरह मुँह खोलते हैं, वे कभी इस बात की आशा नहीं कर सकते कि उनकी संतान एकदम सच्ची होगी।

किसी विद्यालय में कोई ऐसी बात नहीं सिखाई जानी चाहिए जो अध्यापक स्वयं न जानता हो। विश्वासों, मिथ्या-विश्वासों और मतों को वैज्ञानिक तौर पर सिद्ध बातों की गिनती में नहीं लेना चाहिए। बच्चे को खोज करने की शिक्षा मिलनी चाहिए, न कि विश्वास करने की। अत्यधिक विश्वास की अपेक्षा अत्यधिक संदेहशील होना अच्छा है। इसलिए बच्चों को यही शिक्षा मिलनी चाहिए कि यह उनका कर्तव्य है कि वे स्वयं सोचें, समझें, और यदि संभव हो तो जानें।

वास्तविक शिक्षा ही भविष्य की आशा है। बुद्धि का विकास और हृदय की सभ्यता, संसार से अभाव और अपराध को दूर कर देगा। विद्यालय ही सच्चा मंदिर है और विज्ञान ही मनुष्य-जाति का वास्तविक त्राता। शिक्षा - वास्तविक शिक्षा, ईमानदारी, सदाचार तथा संयम की मित्र है।

हम लोगों को बुद्धिमान और नेक बनाने के लिए कानून का भरोसा नहीं कर सकते और न ही हम यह आशा कर सकते हैं कि आकर्षणों से दूर रहने से ही लोग सच्चरित्र बने रहेंगे।

आकर्षण जंगल के वनों की तरह घने हैं। जब तक मर न जाय कोई भी उनकी पहुँच से बाहर नहीं हो सकता। बड़ी बात यह है कि लोग इतने समझदार हों, इतने मजबूत हों कि वे आकर्षणों से भागे नहीं, किन्तु उनका मुकाबला करें। सभ्यता की सारी शक्तियाँ सदाचार और संयम का पक्ष लिए हुए हैं। ऐसी बातों में कानून के द्वारा कुछ नहीं हो सकता, क्योंकि कानून इन बातों में प्रायः व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अपहरण करता है। संयम, सदाचार अथवा और भी किसी चीज के लिए स्वतंत्रता का बलिदान नहीं किया जा सकता। हर वस्तु की अपेक्षा यह अधिक मूल्यवान है। तो भी ऐसे लोग हैं जो जंगली-घास की वृद्धि को रोकने के लिए सूर्य को नष्ट कर डालना पसंद करेंगे। सूर्य का जीवन से जो संबंध है, ठीक वही संबंध स्वतंत्रता का सभी सद्गुणों से है। स्वतंत्रता को खो देने की अपेक्षा यह अच्छा है कि मानवता फिर अपनी आरंभिक अवस्था को प्राप्त हो जाय, आदमी गारों और गुफाओं में रहने लग जाए, वह सारी कला और सारे आविष्कारों को भूल जाय। स्वतंत्रता उन्नति की साँस है; यह प्रेम और आनंद का बीज है, धरती है, गर्मी है, और वर्षा है।

इसलिए सबको यही शिक्षा दी जानी चाहिए कि स्वयं प्रसन्न रहना सबसे बड़ी महत्त्वाकांक्षा है, और दूसरों की प्रसन्नता का कारण बनना। सफलता के लिए स्थान और पद अनावश्यक है। अत्यधिक धन इकट्ठा करने की इच्छा एक प्रकार का पागलपन है। उन्हें यह शिक्षा मिलनी चाहिए कि जिस चीज की उन्हें आवश्यकता नहीं, जिस चीज का न उनके लिए और न किसी दूसरे के लिए कोई उपयोग है, उसका संग्रह करना शक्ति का अपव्यय है, विचार का अपव्यय है, और जीवन का अपव्यय है।

मानव-जाति में न भिखारी ही सबसे सबसे अधिक सुखी है और न करोड़पति ही। सीढ़ी के निचले सिरे पर खड़ा हुआ आदमी ऊपर चढ़ना चाहता है और जो उसके ऊपर के सिर पर है, उसे डर लगा रहता है कि कहीं वह गिर न पड़े। एक माँगता है, दूसरा इन्कार करता है और बार-बार इन्कार करने से हृदय इतना कठोर हो जाता है और हाथ इतने लोभी कि उनसे छोड़ते ही नहीं बनता।

थोड़े आदमी ही इतने समझदार हैं और थोड़े ही आदमियों में इतनी वास्तविक महानता है कि वह विशाल धन-राशि के स्वामी बन सकें। सामान्य रूप से संपत्ति ही उनकी मालिक होती है। वे संपत्ति के लिए उसी प्रकार खटते है जिस प्रकार गुलाम अपने मालिक के लिए। जो आदमी किसी

अच्छे काम-काज में लगा है, खासी आमदनी कर लेता है, भविष्य के लिए भी कुछ बचा कर रख सकता है, अपने बच्चों को पढ़ा-लिखा सकता है और अपने प्रियजनों की भूख-रूपी भेड़िये से रक्षा कर सकता है - वही आदमी सबसे अधिक प्रसन्नचित्त होना चाहिए।

अब समाज धन के आगे झुकना और घुटने टेकना जानता है। धन से शक्ति मिलती है। धन से खुशामद और पूजा होती है। इसलिए करोड़ों आदमी अपनी सारी शक्ति, अपना सब कुछ धन कमाने में खर्च करते हैं और यह तब तक जारी रहेगा, जब तक कि समाज इतना अज्ञानी बना रहेगा, इतना ढोंगी बना रहेगा कि वह बिना धनी आदमी के चरित्र की ओर तनिक भी ध्यान दिए, उसका अदर-सत्कार करता रहे।

धनिकों का विचार करते समय दो बातें ध्यान देने की हैं : उन्होंने धन कैसे कमाया? वे धन का क्या करने जा रहे हैं? क्या धन ईमानदारी से कमाया गया है? क्या उसका उपयोग मानवता के कल्याण के लिए हो रहा है? जब आदमी वास्तव में समझदार हो जाएगा, जब उसका मस्तिष्क वास्तव में विकसित हो जाएगा तो कोई भी भला आदमी किसी इसी चीज के संग्रह के लिए अपनी जान नहीं देगा जिसकी या तो उसे आवश्यकता नहीं है, या जिसका वह बुद्धिपूर्वक कोई उपयोग नहीं कर सकता।

समय आएगा जब सच्चा, बुद्धिमान आदमी तब तक प्रसन्न नहीं होगा, तब तक संतुष्ट नहीं होगा, जब तक उसके करोड़ों भाई नंगे और भूखे रहेंगे। समय आएगा जब हर दिल में दया के पवित्र फूल की सुगंध महकती होगी। समय आएगा जब संसार सत्य की खोज के लिए उत्सुक होगा, और उत्सुक होगा प्रसन्नता के नियमों का पता लगाने के लिए तथा तदनुसार अपना जीवन बिताने के लिए। समय आएगा जब प्रत्येक दिमाग में मानसिक उदारता की हवा बहती होगी।

आदमी तभी सभ्य समझा जाएगा जब उसके वग उसकी बुद्धि के अधीन होंगे, जब ट्रक सिंहासन पर विराजमान होगा, और जब वेगों का गरम खून सफल विद्रोह न कर सकेगा।

संसार को सभ्य बनाने के लिए, संपूर्णता का सुनहरी दिवस शीघ्र लाने के लिए, हमें बच्चों को शिक्षा देनी चाहिए। वह हमें पालने से ही आरम्भ करनी चाहिए - माता की प्रेम-भरी गोद से ही।

7 हम काम करें और प्रतीक्षा करें

जिन सुधारों की मैंने बात की है ये एक दिन में नहीं हो सकते, सम्भव है अनेक शताब्दियों तक नहीं; और इस बीच में अपराधों की कमी नहीं, दरिद्रता की कमी नहीं और भूख की कमी नहीं। इसलिए कुछ न कुछ अभी करना चाहिए।

जहाँ तक सम्भव हो हर आदमी आत्म-निर्भर होने का प्रयत्न करे; हर आदमी समझदारी के साथ कल की चिंता करे; और यदि कोई अपना पालन-पोषण कर लेता है और तो भी उसके पास कुछ बच रहता है तो उसे चाहिए कि जो बचा है, उसमें से एक हिस्सा वह अभागों के लिए खर्च करे। हर आदमी यथासामर्थ्य अपने भाइयों की सहायता करे। हर आदमी को चाहिए कि अपने परिचितों में जो गिरे हैं, उन्हें उठाने का प्रयत्न करे, जिनको काम नहीं है, उनको काम दे। हर आदमी मधुर-वाणी बोले, प्रसन्नता और आशा की वाणी बोले। दूसरे शब्दों में हर आदमी जितनी भी भलाई कर सकता है करे, अपने भाइयों की जो भी सेवा कर सकता हो करे, लेकिन साथ ही इस बात के लिए प्रयत्नशील रहे कि अच्छे दिन यथाशीघ्र आयें।

मेरी राय में यही सच्चा धर्म है। जो भलाई तुम कर सकते हो उसका करना 'महात्मा' शब्द के ऊँचे से ऊँचे और श्रेष्ठ से श्रेष्ठ अर्थों में 'महात्मा' बनना है। जो भलाई तुम कर सकते हो उसका करना ही वास्तविक और सच्ची आध्यात्मिकता है। किसी के दुख को दूर करना, निराशा की अंधेरी रात में आशा की किरण संचार करना, यही सच्ची पवित्रता है। यही विज्ञान का धर्म है। पुराने मत मतांतर बड़े ही संकुचित हैं, जिस संसार में हम रह रहे हैं, वे इसके लिए नहीं हैं। हम विशाल और श्रेष्ठतर होते जा रहे हैं।

"अज्ञानता ही एकमात्र अंधकार है।"

हमें चाहिए कि हम संसार में मानसिक प्रकाश की बाढ़ ला दें।